नवज्योति सिंह

भारतीय चिंतन परम्परा का नया पाठ

अविनाश झा

भारतीय संस्कृति का पुनर्पाठ तैयार करने में आजीवन लगे रहे नवज्योति सिंह (28 फ़रवरी, 1958–3 मार्च, 2018) एक विलक्षण दार्शनिक व्यक्तित्व के स्वामी थे। केवल साठ वर्ष की आयु में ही उनका देहांत भारतीय विचार-जगत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है। अपनी अस्वस्थता के बावजूद वे हाल तक शिक्षण और शोध में पूरी तरह सक्रिय रहे। नवज्योति हैदराबाद के आईआईआईटी (इंटरनैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ इनफ़ॉर्मेशन टेक्नॉलॉजी) में सेंटर फ़ॉर एग्ज़ैक्ट ह्यूमैनिटीज़ के प्रमुख हस्ताक्षर ही नहीं थे, बल्कि मानविकी के इस अनूठे शोध केंद्र को उन्होंने ही कल्पित किया था। उनके अन्वेषणों का फ़लक बहुत बड़ा है, जो गणित, लॉजिक, भाषा-विज्ञान और दर्शन से होते हुए कम्प्यूटर साइंस तक जाता है। इन अनुशासनों के साथ उनकी यात्रा एक दार्शनिक तलाश की तरह थी। विद्वत्ता की ख़ातिर विद्वत्ता की उन्हें कोई ललक न थी।

मैं उनसे 1981 में आईआईटी, कानपुर में पहली बार मिला। सत्तर का दशक कई शिक्षण संस्थानों में राजनीतिक असंतोष व वैचारिक बेचैनी के लिए जाना जाता है। इन्हीं दिनों आईआईटी, कानपुर में प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का एक बड़ा हिस्सा सोच-विचार के क्षेत्र में एक नयी लकीर खींचने के लिए उत्सुक था। इन्हीं विद्यार्थियों को राजनीतिक प्रश्नों के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान से संबंधित बहस को एक विशेष दार्शनिक मोड़ देने का श्रेय जाता है। अस्सी के दशक तक आते-आते राजनीतिक सरगर्मियाँ तो कम हो गयीं, पर विद्यार्थियों और शिक्षकों के एक अपेक्षाकृत छोटे हिस्से में महत्त्वाकांक्षी दार्शनिक और राजनीतिक प्रस्तावों पर खुली बहस का माहौल ज़रूर बन गया। इन चर्चाओं में कम्युनिस्ट, समाजवादी, गाँधीवादी से लेकर राजनीतिक इस्लाम और राष्ट्रवादी विचारधाराएँ एक-दूसरे से उलझी हुई थीं। आईआईटी के बृहत्तर विद्यार्थी समुदाय के लिए विचारधाराओं के इस भेद का कोई विशेष अर्थ न था और इन बहसों और क्रियाकलापों में शामिल लोगों को 'क़ौमी' कह कर सम्बोधित किया जाता था।

1981 में जब मैं वहाँ पहुँचा, नवज्योति न्युक्लियर अभियांत्रिकी में अपने एम.टेक. का शोध समाप्त कर रहे थे। उस समय वहाँ पीपीएसटी (पैट्रियोटिक ऐंड पीपुल ओरिएंटेड साइंस ऐंड टेक्नॉलॉजी) नाम का एक समूह सक्रिय था जो सत्तर-अस्सी के दशकों में देश-विदेश में उभरे जन-विज्ञान आंदोलनों से अलग था। विज्ञान को लोगों तक ले जाने की बजाय इस समूह के सदस्य विज्ञान को समाज के अनुरूप बनाना चाहते थे। नवज्योति भी इस समूह के एक सक्रिय सदस्य थे। नवज्योति के अनुसार 'पैट्रियोटिक' से उनका अभिप्राय 'संस्कारनिष्ठ' था। वे विज्ञान को भारतीय संस्कृति से 'संस्कारित' करना चाहते थे। साथ ही वे भारतीय संस्कृति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की परम्पराओं की छानबीन भी कर रहे थे। उनका ऐसा मानना था कि भारत की बहुसंख्यक जनता आज भी उन्हीं परम्पराओं के आधार पर अपनी जीविका और जीवन चला रही है। उनका विचार था कि भारतीय संस्कृति की पहचान केवल 'आध्यात्मिक' या 'पिछड़ेपन' में सिमट जाने से यह वास्तविकता आँखों के सामने होते हुए भी हमारे विचारों से गुम हो गयी है। कानपुर और अन्य शहरों में पीपीएसटी से संलग्न कई युवा वैज्ञानिक, शोधार्थी और कार्यकर्ता मिल कर अपने शोधों द्वारा भारतीय संस्कृति का एक पुनर्पाठ बनाने में लगे हुए थे। इन शोधों के परिणाम उनकी पत्रिका *पीपीएसटी बुलेटिन* के अंकों में प्रकाशित हो रहे थे। तक़रीबन बीस अंकों में कृषि, स्थापत्य, स्वास्थ्य, जंगल इत्यादि से लेकर गणित, लॉजिक और आधुनिक विज्ञान के दर्शन और इतिहास पर कई महत्त्वपूर्ण लेख मिलते हैं।[1]

नवज्योति का दार्शनिक रुझान बुलेटिन में प्रकाशित उनके लेखों में स्पष्ट दिखता है। उनका एक लेख भारत, चीन, यूनान और आधुनिक पश्चिम में गणित के मूल सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। एक अन्य लेख 'फ़ेनोमेनोलॉजी और भारतीय दर्शन',[2] इसी नाम से दिल्ली में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के वैचारिक ढाँचे की समीक्षा करता है।[3] इस लेख में प्रसिद्ध दार्शनिक जे.एन. मोहंती के उद्घाटन भाषण एवं कई अन्य पर्चों की चर्चा के आधार पर भारतीय दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन में युरो-केंद्रित चिंतन के सूक्ष्म प्रभावों की विषद विवेचना मिलती है। नवज्योति के अनुसार इस तुलनात्मक अध्ययन की असमतल ज़मीन इसके शीर्षक में ही ज़ाहिर हो जाती है। एक तरफ़ तो अपने विश्लेषणात्मक उपकरणों से युक्त एक दार्शनिक संरचना फ़ेनोमेनोलॅजी (घटनाक्रियाशास्त्र) है, और दूसरी ओर एक धुँधली सी वस्तु है 'भारतीय दर्शन'। नवज्योति के अनुसार किसी भारतीय दर्शन, जैसे अद्वैत, से कुछ समान-से दिखते तत्त्वों को रेखांकित कर दिया जाता है, या फिर मूल सिद्धांतों के भेद के अन्वेषण के बिना ही भारतीय दर्शन में फ़ेनोमेनोलॅजी के अनुपस्थित आयामों पर चर्चा हो जाती है। उनका कहना था कि तुलना या तो दो दर्शनों के बीच अपने-अपने विश्लेषणात्मक उपकरणों के साथ हो, या फिर दो दर्शन परम्पराओं की तुलना का एक दूसरे प्रकार का सभ्यता-विमर्श हो— तभी तुलना की समतल ज़मीन बन सकती है।

आईआईटी, कानपुर से निकल कर नवज्योति शोध कार्यों में लग गये। एक शोध परियोजना में हिस्सा लेने के बाद एनआईएसटीएडीएस (नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस टेक्नोलॅजी ऐंड डिवेलपमेंट स्टडीज़, दिल्ली) में शोधकर्ता के रूप में कार्यरत हो गये और लम्बे समय तक वहाँ रहे। यहीं पर उनकी मुलाक़ात अनुराधा सिंह (उस समय अनुराधा खन्ना) से हुई जो उनकी जीवनसंगिनी बनीं। दोनों ने आयुर्वेद के दार्शनिक आधारों पर साथ-साथ काम भी किया। उस बीच कुछ समय के लिए वे प्राचीन भारतीय विज्ञान के इतिहासकार देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय के सहयोगी के रूप में कलकत्ता में रहे।

---

[1] पी.पी.एस.टी. बुलेटिन के कई अंक ppstbulletins.blogspot.in पर उपलब्ध हैं.

[2] पी.पी.एस.टी. बुलेटिन (1985) : 53-71.

[3] पी.पी.एस.टी. बुलेटिन, अंक 16, सितम्बर 1988. इसी शीर्षक से कुछ सुधारों के साथ पुन: प्रकाशित *जर्नल ऑफ़ इण्डियन काउंसिल ऑफ़ फ़िलॉसोफ़िकल रिसर्च,* (जे.आई.सी.पी.आर) 7 (3), मई-अगस्त 1990 : 109-132. योजना तो यह थी कि प्रोफ़ेसर मोहंती का जवाब भी छपेगा, पर वह प्रकाशित नहीं हो पाया.

भारतीय चिंतन की विश्लेषणात्मक परम्पराएँ उनके अध्ययन के केंद्र में थीं। इस दौर के उनके शोधों में भारतीय चिंतन-परम्परा का एक नया पाठ बनते दिखता है। एक तरफ़ तो भारतीय परम्परा का एक लोकप्रिय आध्यात्मिक पाठ है। दूसरी ओर पश्चिमी ज्ञान परम्पराओं से मिलते-जुलते तत्त्वों के अन्वेषण पर आधारित पाठ है जो अकादमिक दुनिया में प्रचलित है। दोनों में एक पूर्वधारणा है कि भारतीय परम्परा में अगर कोई तर्कसंगत वैचारिकी है भी, तो वह पाश्चात्य 'रीज़न' के सम्मुख कमज़ोर है, या उसकी पूर्व-प्रति है, और इसलिए अप्रासंगिक है।

इनसे हट कर नवज्योति ने उस मूल वैचारिकी की खोज का प्रयास किया जो भारतीय चिंतन परम्पराओं को समृद्ध बनाती रही है और जो उनकी विशेषता है। तुलनात्मक संदर्भ नवज्योति के लिए भी सदा उपस्थित रहा। उनका मानना था कि परम्परा को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की चकाचौंध में ही खड़ा होना पड़ेगा। पर उनके शोध के केंद्र में वे 'असमान तत्त्व' आ जाते हैं जो पश्चिमी चिंतन परम्पराओं से अलग हैं, या जो वहाँ अनुपस्थित हैं। इस प्रकार से वे भारतीय चिंतन परम्परा में वैचारिकी के प्रवाह का एक नया पाठ लिखते हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास की एक पहेली है जिसकी ओर नवज्योति ने हमारा ध्यान आकर्षित किया।[4] करीब 1500 ई.पू. तक हड़प्पा की संस्कृति और उसके साथ ही हड़प्पन लिपि का लोप हो चुका था। फिर 500 ई.पू. से 300 ई.पू. में ही जा कर हमें ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपि का प्रमाण उस समय के शिलालेखों से मिलता है। इस लम्बे कालखण्ड में लिपियाँ उपस्थित नहीं हैं। इसी कालखण्ड में वैदिक वाङ्मय की रचना और उसके प्रामाणिक मौखिक स्वरूप की स्थापना होती है। इतिहासकारों की मान्यता है कि इसी कालखण्ड में सुमेर, मिस्र और चीन की संस्कृतियों में लिपिबद्धता ने सांस्कृतिक धरोहर को स्थायित्व प्रदान किया। लिपिबद्धता से ही भाषा का स्थायित्व बनता है और लम्बे पाठों की रचना होती है।

पहेली यह है कि मौखिक वैदिक वाङ्मय पर आधारित संस्कृति का स्थायित्व कहाँ से आता है और इसका संचरण कैसे होता है? नवज्योति भारतीय वैचारिकी की विशेषता का मूल स्रोत यहीं पर देखते हैं। यह स्रोत वेद की विषय-वस्तु में नहीं, बल्कि वेदपाठ में है। वेदपाठ के लिए ध्वनियों की लम्बी शृंखला को मानस पटल पर इस तरह अंकित करने की ज़रूरत थी जैसे पत्थर की शिलाओं पर अक्षरों को अंकित किया जाता है।

पहेली यह है कि मौखिक वैदिक वाङ्मय पर आधारित संस्कृति का स्थायित्व कहाँ से आता है और इसका संचरण कैसे होता है? नवज्योति भारतीय वैचारिकी की विशेषता का मूल स्रोत यहीं पर देखते हैं। यह स्रोत वेद की विषय-वस्तु में नहीं, बल्कि वेदपाठ में है। वेदपाठ के लिए ध्वनियों की लम्बी शृंखला को मानस पटल पर इस तरह अंकित करने की ज़रूरत थी जैसे पत्थर की शिलाओं पर अक्षरों को अंकित किया जाता है। तभी इन ध्वनियों का अपरिवर्तित पाठ शताब्दियों तक सम्भव हो सका। यह कोई आसान चीज़ नहीं है। इसके लिए काल में ध्वनियों की पंक्ति की समझ ज़रूरी है। इस समझ को बनाने के लिए 'वाक्' का विश्लेषण आवश्यक है। हम पाते हैं कि वाक़ई 'वेद पाठ' के इर्द-गिर्द, पूर्व और उत्तर, भाषा ज्ञान का एक संसार था जिसमें आगे जाकर पाणिनि का व्याकरण लिखा जाता है जो विश्लेषणात्मक सर्जन का एक अन्यतम उदाहरण है। काल में ध्वनि की इस पंक्ति में बहुत कुछ घटित होता है। अर्थ भी बनते हैं, वाक्य भी बनते हैं और भाषा का एक संसार भी बनता

[4] देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय (1986) : 406-442.

है। इसी 'पंक्ति' का विचार बौद्धों के 'चित्त-संतति' में भी उपस्थित है— ध्वनि की जगह यहाँ चित्तों की शृंखला है। क्षणभंगुर चित्त की पंक्ति के ऊपर चार परमार्थिक धर्मों के व्यापार से ही अभिधम्म अनुभव के संसार की समझ बनाता है।

'अनुभव की पंक्ति' का तो भारतीय विश्लेषण पद्धतियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनता है, चाहे वह किसी भी दार्शनिक परम्परा का हो। पर यह पंक्ति सांतत्यक या कॉन्टीन्युअम नहीं है युक्लिड की 'लाइन' की तरह। अनुभव की पंक्ति एक संसक्तक या कॉन्टीग्युअम है। युक्लिड की 'लाइन' में हर दो बिंदु के बीच असंख्य बिंदु होते हैं। अनुभव को इस तरह नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि अनुभव का एक क्रम होता है, एक के बाद एक। इसलिए 'अनुभव की पंक्ति' का विश्लेषणात्मक उपकरण उस पश्चिम में नहीं है जहाँ का विचार संसार कॉन्टीन्युअम पर ही टिका है। (डिजिटल दुनिया में डिस्क्रीट का विचार भी उभरा है)। भारतीय विचार-जगत में 'पंक्ति' का विश्लेषणात्मक महत्त्व नवज्योति के शोध में उभर कर आता है। 'अनुभव की पंक्ति' और कॉन्टीन्युअम की व्याख्या नवज्योति ने लाइबनीज़, ब्रेंतानो और व्हाइटहेड के सिद्धांतों की प्रत्यालोचना के माध्यम से तो की ही, वैशेषिक दर्शन पर आधारित इस पंक्ति की अपनी व्याख्या भी पेश की।[5] नवज्योति ने कहा कि भारतीय परम्परा में भाषा-विज्ञान का कुछ वैसा ही किरदार है जैसा कि गणित का पश्चिमी परम्परा में, जहाँ गणित को विज्ञान की रानी कहते हैं।[6] उन्होंने कहीं पढ़ा था कि भारत के लोग 'व्याकरण के लोग' या 'व्याकरण-जन' हैं, 'किताब के लोग' या 'पीपुल ऑफ़ बुक' नहीं। यह कथन उन्हें बहुत पसंद आया।

नवज्योति ने 'प्रस्थान मीमांसा' के नाम से एक शोध परियोजना का सूत्रपात्र किया जिसके तहत भारतीय दर्शन के कुछ मूल सैद्धांतिक प्रश्नों पर तीन सम्मेलन आयोजित किये गये। इनमें कई भारतीय दार्शनिकों ने भाग लिया। इसी से संबंधित एक शोध-नेटवर्क बनाने का प्रयास हुआ ताकि 'प्रस्थान मीमांसा' शृंखला को चलाते हुए आगे ले जाया सके। इसी सिलसिले में उनकी मुलाक़ात प्रोफ़ेसर पी.के. मुखोपाध्याय से हुई जो बौद्धिक सहकार्यता से शुरू होकर गहरी दोस्ती में बदल गयी। उन्हें साथ देखने का अनुभव बहुत सुखद था। एक-दूसरे से चुनौती भरे प्रश्न करते हुए भी उनका परस्पर स्नेह देखते ही बनता था।

नवज्योति ने पाश्चात्य दर्शन का भी गहरा अध्ययन किया था। प्राचीन यूनानी और आधुनिक चिंतन में रूप के विस्तृत अध्ययन से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पारमिनेडिज़, प्लेटो और अरस्तू से चल कर आधुनिक विचार में भी 'रूप' की कल्पना एक अंत:क्षेत्र (इनक्लोज़र) के रूप में हुई है।[7] इस तरह के 'बंद रूप' का सिद्धांत तब बना जब प्राचीन यूनानी विचार में 'एपिरोन की बलि देवी एलिथिया की वेदी पर दी गयी'।[8] एपिरोन या अपरिमित के विचार को त्याग कर 'रूप' की कल्पना हुई। इसी बिंदु को नवज्योति भारतीय और पश्चिमी चिंतन परम्पराओं के भेद का स्रोत भी मानते हैं। 'एपिरोन' के परित्याग के बाद पिरोन या 'परिमित' के आधार पर जो 'बंद रूप' की कल्पना हुई वह तर्कवाक्य (प्रपोज़ीशन) और समुच्चय (सेट) में दिखती हैं। ये दोनों ऐसे रूप हैं जिनकी विषय-वस्तु रूप के अंदर स्थित होती है। 'पंक्ति' और 'बिंदु' की व्याख्या के आधार पर नवज्योति ने एक 'खुले रूप' की कल्पना की, जिसे उन्होंने 'विराम चिह्न' (पंक्चुएटर) का नाम दिया। यह रूप बिंदु-स्वरूप है और इसकी विषय-वस्तु रूप के बाहर होती है। 'विराम चिह्न' का अपनी विषय-वस्तुओं पर कोई नियंत्रण नहीं होता— वे परिमित भी हो सकती हैं, अपरिमित भी हो सकती हैं।

---

[5] स्वामी परमांनद (2003) : 111-159.

[6] ए. रहमान (1984) : 79-106.

[7] 'प्रोलेगोमेना फ़ॉर अ स्टडी ऑफ़ द नोशन ऑफ़ फ़ॉर्म', नैशनल सेमिनार ऑन वेस्टर्न ऐंड इण्डियन थियरीज़ ऑफ़ इन्फरेंस, वाई (महाराष्ट्र), जून 1987.

[8] गोविंद चंद्र पाण्डेय (2005) : 1250-1287.

इतिहास और हिस्ट्री के भेद पर उनका एक लेख है जहाँ वे अतीत-बोध की इन दो अभिव्यक्तियों की व्याख्या इस रूप में करते हैं कि 'इतिहास' में 'न्याय' की स्मृतियों को कथाओं में सँजोया जाता है और 'हिस्ट्री' अतीत में हुए अन्यायों के अंकन पर आधारित है। इस भेद से उनकी पद्धतियों में एक भेद आ जाता है। 'न्याय' का वस्तुपरक अंकन सम्भव नहीं है, उसे कथाओं में ही कहा जा सकता है और इन्हें कहते-सुनते नैतिक प्रश्नों का मंथन भी चलता है। अन्याय की वस्तुपरक परीक्षा होती है और 'हिस्ट्री' इसके इर्द-गिर्द बुनी जाती है। हिस्ट्री साक्ष्यों की स्वायत्तता पर आधारित है।

'रूप' की इस कल्पना के साथ भारतीय दर्शन में उन्हें दो मूल रूप दिखे— एक तो 'विराम चिह्न' और दूसरा 'भाव प्रत्यय'। 'रूप' की अपनी व्याख्या के साथ ही नवज्योति भारतीय दर्शन के पुनर्पाठ के आगे जाकर भारतीय विश्लेषण के उपकरणों की पुनर्रचना की ओर बढ़ रहे थे। इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस स्टडीज़, शिमला में प्रवास के दौरान उन्होंने न्याय, इतिहास और समाज की एक रूप-आधारित व्याख्या कर डाली।[9] इसके लिए उन्होंने वैशेषिक और मीमांसा दर्शन के आधार पर क्रिया-लोक की एक व्याख्या की। इसके मुताबिक़ किसी भी प्रकार की क्रिया में अणुओं, परमाणुओं, अंगों-प्रत्यंगों की अनगिनत क्रियाएँ शामिल होती हैं। इन अनगिनत क्रियाओं के सारांश के रूप में सोद्देश्य क्रियाएँ या कर्म (डीड्स) बनते हैं, जिन्हें 'पढ़ा' जा सकता है या 'कहा' जा सकता है। कर्मों के बीच प्रतिरोध आने पर इस प्रतिरोध के समाधान में अन्य कर्म होते हैं। समाधान के लिए जो विवेकपूर्ण कर्म होते हैं, उनसे 'विधियाँ' बनती हैं। इन विधियों के 'समुच्चय' या 'संहिता' के सैद्धांतिक विश्लेषण के आधार पर नवज्योति 'वेद' की एक रूपात्मक समझ बनाते हैं। चाहे वेद हो, या बुद्ध के अनगिनत जन्मों की कहानियाँ हों, ये अनादि सृष्टि और अनादि बंधत्व की पृष्ठभूमि में विवेकपूर्ण कर्मों के विधान रचने के उपकरण हैं।

जहाँ एक ओर ये शोध चल रहे थे, दूसरी ओर पीपीएसटी की गतिविधियों में भी उनकी पूरी भागीदारी थी। नब्बे के दशक में 'भारत के पारम्परिक विज्ञान और टेक्नॉलॅजी' विषय पर तीन राष्ट्रीय सम्मेलन हुए जिनमें से हर एक में सैकड़ों शोधार्थियों, कारीगरों, किसानों और कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। पहली कांग्रेस 1993 में आईआईटी, बम्बई में आयोजित हुई जो अपने तरह का पहला आयोजन था। इन सम्मेलनों की दिलचस्प कहानी उदयन वाजपेयी को दिये गये लम्बे साक्षात्कार में मिलती है।[10]

इस सम्मेलनों के सिलसिले में वे देश-भर में यात्राएँ करते रहे। इस दौरान सैकड़ों लोगों से उनकी बातचीत हुई जिनमें प्रधानमंत्री और वरिष्ठ अधिकारियों से लेकर दूर-दूराज़ के शहरों में रहने वाले कारीगर और कार्यकर्ता शामिल थे। इन यात्राओं और इन लोगों के बारे में कहानियों का पूरा पुलिंदा उनके पास था। एक निपुण कथावाचक की तरह वे इन कहानियों को रस लेकर सुनाते थे। कहानी और कथाओं का उनके विचार-संसार में भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे मिथकों और कथाओं

---

[9] 'पंक्चुएटिंग रिएलिटी : फ़ॉर्मल थियरी ऑफ़ जस्टिस, हिस्ट्री ऐंड सोसायटी', अप्रकाशित.

[10] उदयन वाजपेयी (2018) : 21-30. *विचरण* में एक दूसरी कहानी बनारस के मीमांसक पण्डित पट्टाभिराम शास्त्री की है जिनसे वे एक दार्शनिक सेमिनार के आयोजन संदर्भ में मिले. (पृ.18-20) यह कहानी नवज्योति ने हिंदी कथाकार दूधनाथ सिंह को सुनाई थी. दूधनाथ ने इस पर आधारित 'नव्य न्याय' के नाम से एक कहानी लिख डाली जो *हंस* में प्रकाशित हुई. कहानी लगभग वही है, सिर्फ़ मीमांसक की जगह नव्य न्याय के पण्डित ने ले ली है.

को दार्शनिक चर्चाओं में सहजता से बुन देते थे। वे मानते थे कि कहानियाँ भी सत्य का उद्घाटन करती हैं।

शिमला प्रवास में इतिहास और हिस्ट्री के भेद पर उनका एक लेख है जहाँ वे अतीत-बोध की इन दो अभिव्यक्तियों की व्याख्या इस रूप में करते हैं कि 'इतिहास' में 'न्याय' की स्मृतियों को कथाओं में सँजोया जाता है और 'हिस्ट्री' अतीत में हुए अन्यायों के अंकन पर आधारित है। इस भेद से उनकी पद्धतियों में एक भेद आ जाता है। 'न्याय' का वस्तुपरक अंकन सम्भव नहीं है, उसे कथाओं में ही कहा जा सकता है और इन्हें कहते-सुनते नैतिक प्रश्नों का मंथन भी चलता है। अन्याय की वस्तुपरक परीक्षा होती है और 'हिस्ट्री' इसके इर्द-गिर्द बुनी जाती है। हिस्ट्री साक्ष्यों की स्वायत्तता पर आधारित है। वैसे 'हिस्ट्री' का काम भी 'कथन' के बिना नहीं चलता। भारतीय आधुनिकता में 'इतिहास' और 'हिस्ट्री' का भेद किस तरह प्रभावी होता है, वह एक अलग ही कहानी है।

इतिहास का यह विश्लेषण भी अंतत: कर्म के विश्लेषण पर आधारित है। एक-दूसरे के कर्मों को पढ़ना/सुनना और उस पर नैतिक विचार एक ऐसा काम है जो हम हर समय करते रहते हैं। नवज्योति इस सरल अवलोकन को एक ऊँचाई तक ले जाते हैं और मनुष्य की वैधानिक स्वतंत्रता का एक सिद्धांत सामने रखते हैं। हर व्यक्ति उचित/अनुचित या अच्छे/बुरे का भेद करने के लिए सर्वथा स्वतंत्र है। बिस्तर पर पड़ा शारीरिक रूप से निष्क्रिय व्यक्ति भी उचित/अनुचित का भेद करने में सक्षम है और वह ऐसा करता भी है।[11] इस विश्लेषण को आगे बढ़ाते वे 'शिष्टता' की सैद्धांतिक व्याख्या करते हैं और 'शिष्ट व्यक्ति' के निर्माण को सारे धर्मों के मूल में देखते हैं।[12] शिष्टता का अन्वेषण उन्हें प्लेटो के संवाद 'यूथिफ्रो' में हुए 'यूसेबिया' के विश्लेषण की ओर ले जाता है, जिसका अनुवाद वे शिष्टता के रूप में ही करते हैं। सम्राट अशोक के यूनानी भाषा के शिलालेखों में धर्म के अनुवाद के रूप में यूसेबिया प्रयुक्त हुई है।

नवज्योति के व्यक्तित्व और दर्शन में एक तरह का विरोधाभास लग सकता है— एक तरफ़ कथाओं में उनकी गहरी दिलचस्पी और दूसरी ओर विश्लेषणात्मक चिंतन की ओर उनका रुझान। कुछ उसी तरह का विरोधाभास फिर उभरा है जब उन्होंने एग्ज़ैक्ट को ह्यूमैनिटीज़ के साथ रख कर सेंटर फ़ॉर एग्ज़ैक्ट ह्यूमैनिटीज़ (सीईएच) की स्थापना आईआईआईटी, हैदराबाद में की। समसामयिक अकादमिक जगत में इस प्रकार के मानविकी शोध केंद्र की कल्पना बिल्कुल अनूठी है और इसके नाम को लेकर प्रतिक्रियाएँ एक मुस्कान से लेकर तिरस्कार के रूप तक में हो सकती हैं, और होती रहती हैं। हमारे विचार जगत में 'एग्ज़ैक्ट ह्यूमैनिटीज़' एक 'आक्ज़ीमोरॅन' है— दो विसंगत अर्थों को साथ लाने की मूर्खता। यही नहीं, एक कम्प्यूटर साइंस के संस्थान में स्थापित मानविकी के इस शोध-केंद्र की कल्पना कम्प्यूटर साइंस और मानविकी के 'संगम' के रूप में की गयी। शोध के अलावा इस केंद्र में पाँच वर्षों की दोहरी-डिग्री की पढ़ाई होती थी यानी जिसके समापन पर विद्यार्थियों को दो डिग्रियाँ मिलती थीं— कम्प्यूटर साइंस में बी.टेक. एवं 'एग्ज़ैक्ट ह्यूमैनिटीज़' में एम.एस.। इस कोर्स में मानविकी और कम्प्यूटर साइंस की पढ़ाई साथ-साथ चलती थी। दरअसल, शताब्दी के अंत तक पीपीएसटी एक सक्रिय समूह नहीं रह गया था। परम्परा में विज्ञान की खोज अब शायद प्रासंगिक नहीं रह गयी थी। नवज्योति को एक दूसरा रास्ता दिख रहा था जिसमें न सिर्फ़ परम्परा का एक भविष्य था, बल्कि जिसमें मानव-मात्र के भविष्य के लिए कुछ नया बनाने की सम्भावना थी। इसी सम्भावना को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने सीईएच की स्थापना का साहसिक निर्णय लिया। आईआईआईटी द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार करना भी उतना ही साहसिक था।

---

[11] नेचर ऑफ़ हिस्टोरिकल थिंकिंग ऐंड 'ऐतिह्य' : 1-28.

[12] पीटर कोसलोव्एकी (सं.)(2003) : 66-95.

'एग्ज़ैक्ट ह्यूमैनिटीज़' की कल्पना उनके शोधों से ही उभरी थी। भारतीय परम्पराओं के शोध में जो विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और वैचारिक प्रक्रियाएँ उन्हें मिली थीं, उनमें अनुभव से शुरू होकर क्रियाओं तक की प्रक्रियाओं की एक सुस्पष्ट समझ बनाने के उपकरण दिखते थे। 'फर्स्ट पर्सन एक्सपीरिएंस' को आधार बना कर विकसित किये गये ये विश्लेषणात्मक पद्धतियाँ भविष्य की मानविकी के आधार बन सकते थीं। वैशेषिक दर्शन को आधार बनाकर नवज्योति एक 'फॉर्मल ऑन्टोलॅजी' भी विकसित कर चुके थे (निओ वैशेषिक फॉर्मल ऑन्टोलॅजी) और इसे कुछ एक कार्यशालाओं में प्रस्तुत भी कर चुके थे। इसके कम्प्यूटर साइंस में प्रयुक्त होने की सम्भावना भी थी। इस तरह 2007 में इस शोध केंद्र की स्थापना हुई।

कह सकते हैं कि यहाँ से नवज्योति के दर्शन का एक 'वाचिक' दौर शुरू होता है। उनका सारा समय पढ़ाने और विद्यार्थियों के शोध के मार्गदर्शन में ही लगा रहता था। और बाक़ी कथाओं के आदान-प्रदान में। उनका अपना शोध इन्हीं प्रक्रियाओं के ज़रिये चलता रहा। लेकिन लिखना लगभग बंद हो गया, विद्यार्थियों के साथ लिखे शोध पत्रों के अलावा। इस दौर के उनके विचार वीडियो या ऑडियो रिकॉर्डिंग में ही उपलब्ध हैं या फिर पढ़ाने के लिए बनाई गयी स्लाइड्स में। ये स्लाइड्स बड़े जतन से बनाई जाती थीं और एक-एक स्लाइड्स पर वे काफ़ी समय लगाते थे। विद्यार्थियों को पढ़ाने के अलावा उन्होंने कार्यशालाएँ भी कीं। इनमें वाराणसी में आयोजित तीन-हफ़्तों की दो कार्यशालाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। पहली कार्यशाला वैशेषिक दर्शन पर थी जिसमें बनारस के पण्डितों से उनका संवाद भी शामिल था। दूसरी कार्यशाला 'कला-दर्शन' पर आयोजित थी जिसमें अन्य विद्वानों के साथ कुछ प्रसिद्ध कलाकारों ने भी हिस्सा लिया। बहाउद्दीन डागर, कुमार शाहनी, उदयन वाजपेजी, इत्यादि वहाँ उपस्थित थे।

अपने अंतिम वर्षों में नवज्योति का शोध कला-दर्शन पर केंद्रित था। बाद में उनके सारे शोध-विद्यार्थी कलाकार ही थे— चाहे वे पेंटर हों, या डांसर, या रंगकर्मी, या फ़िल्मकार। उनका शोध भी कलाओं में ही था। 'कला' और 'कल्पना' उनके दार्शनिक चिंतन के केंद्र में आ गये थे और उनका मानना था कि समाज के लिए भी वे महत्त्वपूर्ण हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि विश्लेषणात्मक विचार और रूपात्मक अन्वेषण में उनकी दिलचस्पी कम हो गयी हो। कला की रूपात्मक व्याख्या ही उनके शोध के केंद्र में है। यहाँ एक और विरोधाभास लग सकता है— कलात्मक और फ़ॉर्मल के बीच।

ये सारे विरोधाभास, चाहे वे कहानी और विश्लेषण के बीच के हों या कला और दर्शन के बीच के, शायद आज के विमर्श से ही उपजे हैं। उनके अपने विचार-संसार में और न ही उनके व्यक्तित्व में इस तरह की कोई टकराहट दिखती है।

पिछले एक-दो वर्षों से वे अस्वस्थ थे। अपनी लम्बी बीमारी के दौरान भी शारीरिक कमज़ोरी और पीड़ा के बावजूद काफ़ी सहज रहते थे। अपने परिवार के सहयोग से आईआईआईटी में विद्यार्थियों को पढ़ाना और उनके शोध में मार्गदर्शन पिछले नवम्बर तक चलता रहा था। पिछले सितम्बर में उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में कार्यशालाएँ भी की थीं।

फ़रवरी, 2018 के आते-आते वे बिस्तर पर आ गये। उन्हें बोलने में भी प्रयत्न करना पड़ता था। फिर भी दार्शनिक चर्चाओं से उनका चेहरा खिल उठता था। उस समय भी वे कुछ अधूरे काम पूरा करना चाहते थे और ऑडियो रिकॉर्डिंग द्वारा इन्हें करने की कोशिश भी की। उनकी कई पांडुलिपियाँ अभी भी अप्रकाशित हैं। इसके लिए उन्होंने कोई विशेष प्रयत्न भी नहीं किया। उन्हें शायद लगता था कि उनके शोधकार्य और दर्शन का भविष्य उनके विद्यार्थियों के काम से ही बनेगा। जब अंत समय नज़दीक आया तो इन पांडुलिपियों को उन्होंने इकट्ठा करके औरों को सौंप दिया।

इस अंतिम दौर में जब एक बार मैं उनसे मिला तो उन्होंने न्युक्लियर अभियांत्रिकी के अपने एम.टेक थीसिस की प्रति कम्प्यूटर पर दिखाई जो कि उनके पुत्री या पुत्र ने कहीं से डाउनलोड कर

उन्हें दी थी। वे बड़े ख़ुश थे। ये थीसिस फ्रांस के ओक्लो की कुछ गुफाओं में प्राकृतिक रूप से होने वाले न्युक्लियर रिएक्शंस को लेकर है। दूसरे विश्व-युद्ध के पूर्व बम बनाने के लिए अमेरिका में जहाँ कृत्रिम न्युक्लियर रिएक्शन के सफल प्रयोग हुए, वहाँ एक पट्टिका लगी है — 'पहला नियंत्रित न्युक्लियर रिएक्शन यहाँ मानव ने सम्भव किया'। उन्होंने इस पट्टिका की एक छवि इंटरनेट से निकाल कर अपनी थीसिस पर लगा दी थी। उनकी अभियांत्रिकी के शोध में भी एक 'दार्शनिक' बिंदु था, यह देख कर ही वे ख़ुश हो रहे थे। उनकी थीसिस यूँ तो एक तकनीकी थीसिस है पर उसकी पहली पंक्ति कुछ इस तरह से शुरू होती है— 'आज से लाखों वर्ष पहले फ्रांस के एक कोने में पृथ्वी की सतह के ठीक नीचे कुछ गुफाओं में छह न्युक्लियर रिएक्टर सक्रिय थे।'

दार्शनिक ही नहीं, एक कथावाचक का जन्म भी तब तक हो चुका था।

संदर्भ

उदयन वाजपेयी (2018), *विचरण : नवज्योति सिंह से संवाद,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

ए. रहमान (सं.)(1984), 'फ़ाउण्डेशंस ऑफ़ लॉजिक इन ऐंशेंट इण्डिया : लिंगुइस्टिक्स ऐंड मैथेमेटिक्स', *साइंस ऐंड टेक्नॉलॅजी इन इण्डियन कल्चर : अ हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव,* एनआईएसटीएडीएस, नयी दिल्ली.

गोविंद चंद्र पाण्डेय (सं.)(2005), 'द इरैशनल इन इण्डियन ऐंड ग्रीक मैथेमैटिकल थॉट', *गोल्डेन चेन ऑफ़ सिविलाइज़ेशंस : इण्डिक, इरानिक, सेमेटिक ऐंड हेलेनिक, अप टू सिर्का 600 बीसी,* पीएचआईएसपीसी, नयी दिल्ली.

देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय (1986), 'लिंगुइस्टिक ऐंड ओरल ट्रेडिशन इन द पीरियड बिटवीन द डिक्लाइन ऑफ़ हड़प्पन कल्चर ऐंड द राइज़ ऑफ़ मगधन कल्चर', *हिस्ट्री ऑफ़ साइंस ऐंड टेक्नॉलॅजी इन एंशियेंट इण्डिया : द बिगनिंग,* फ़र्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता.

'नेचर ऑफ़ हिस्टोरिकल थिंकिंग ऐंड ऐतिह्य', *स्टडीज़ इन ह्यूमैनिटीज़ ऐंड सोशल साइंसेज़,* ×/2.

पंक्चुएटिंग रिएलिटी : फ़ॉर्मल थियरी ऑफ़ जस्टिस, हिस्ट्री ऐंड सोसायटी, अप्रकाशित.

पी.पी.एस.टी. बुलेटिन के कई अंक ppstbulletins.blogspot.in पर उपलब्ध हैं.

पी.पी.एस.टी. बुलेटिन (1985), 'अ कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ़ फाउंडेशंस ऑफ़ मैथेमेटिक्स इन इण्डिया, चाइना, ग्रीस ऐंड मॉडर्न वेस्ट', अंक 8, मई.

पीटर कोसलोव्स्की (सं.)(2003), 'रोल ऑफ़ गुड मैनर्स एज़ ब्रिज बिटवीन वर्ल्ड रिलीजंस इन सनातन ट्रेडिशन', *फ़िलॉसफ़ी ब्रिजिंग द वर्ल्ड रिलीजंस : अ डिस्कोर्स ऑफ़ द वर्ल्ड रिलीजंस,* क्लूवर एकेडेमिक, डोरड्रेख्त / लंदन / बोस्टन.

प्रोलेगोमेना फ़ॉर अ स्टडी ऑफ़ द नोशन ऑफ़ फ़ॉर्म, नैशनल सेमिनार ऑन वेस्टर्न ऐंड इण्डियन थियरीज़ ऑफ़ इन्फरेंस, वाई (महाराष्ट्र), जून 1987.

'फ़ेनोमेनोलॅजी ऐंड इण्डियन फिलॉसफ़ी', *पी.पी.एस.टी. बुलेटिन,* अंक 16, सितम्बर 1988. इसी शीर्षक से कुछ सुधारों के साथ पुनः प्रकाशित *जर्नल ऑफ़ इण्डियन काउंसिल ऑफ़ फ़िलॉसोफ़िकल रिसर्च,* (जे.आई.सी.पी.आर) 7 (3), मई-अगस्त 1990.

स्वामी परमानंद (2003), 'थियरी ऑफ़ एक्सपीरिऐंशियल कॉन्टीगुअम', *फ़िलॉसफ़ी ऐंड साइंस : एक्सप्लोरेटरी अप्रोच टू कांशसनेस,* रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ़ कल्चर, कलकत्ता.